P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-1* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

गौतम बुद्ध और उनकी वैज्ञानिकता

कपिल कुमार गौतम
शोधछात्र,
हिन्दी विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
सागर, मध्य प्रदेश

सारांश

विश्व में शांति, सद्भाव, मैत्री, करुणा और मानवता का सन्देश प्रेषित करने वाले महामानव गौतम बुद्ध के सन्दर्भ में विभिन्न तथ्यों एवं विचारों का प्रादुर्भाव निरंतर होता रहा है। बुद्ध की वैचारिकी को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि मानकों पर मापने का प्रयास निरंतर होता रहा है। यथा तथ्य बुद्ध की वैचारिकी उन मानकों पर खरी भी उतरती है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में गौतम बुद्ध के दर्शन और वैचारिकी को वैज्ञानिक चिंतन के मानकों पर परखने की आवश्यकता है। बौद्ध दर्शन और गौतम बुद्ध के द्वारा दी गयी शिक्षाओं में विभिन्न वैज्ञानिक तथ्यों का समावेश है। जीवन यापन करने के क्रम में विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों यथा– जल– जंगल, पेड़–पौधे, खाद्य सामग्री इत्यादि के नियंत्रित एवं उचित मात्रा में प्रयोग का विचार बौद्ध साहित्य में मिलता है। विनय सम्बन्धी नियमों में विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों को फ़ैलाने और प्राकृतिक संसाधनों को दूषित करने पर दंड का विधान है। पदार्थ के अतिसूक्ष्म अंश की कल्पना भी बुद्ध के द्वारा की गई है। बुद्ध ने श्रद्धा और आस्था की अपेक्षा आत्मज्ञान पर बल दिया। उन्होंने किसी भी तथ्य को आत्मसात करने से पूर्व तथ्य के सन्दर्भ में सोचने विचारने पर बल दिया। इसलिए गौतम बुद्ध और उनके वैज्ञानिक चिंतन का वर्तमान सन्दर्भों में बहुत महत्व है।

मुख्य शब्द : गौतम बुद्ध, बुद्ध दर्शन, वैज्ञानिकता, चिंतन।

प्रस्तावना

करीब ढ़ाई हजारवर्ष पूर्व भारतीय उपमहाद्वीप पर सामाजिक समरसता एवं मानव अस्तित्व के संकट के समय एक वृहत् वैचारिकी का प्रादुर्भाव हुआ। जिसके केंद्र में केवल और केवल मानव जीवन की सभी समस्याओं का कारण और निवारण समाहित था। इस वृहत्तम वैचारिकी के पुरोधा तथागत गौतम बुद्ध थे, जिन्होंने बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया। बुद्ध की वैचारिकी को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक इत्यादि मानकों पर मापने का प्रयास निरंतर होता रहा है और यथातथ्य वह वैचारिकी उन मानकों पर खरी भी उतरती जान पड़ती है। वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है इसलिए बुद्ध की वैचारिकी को भी वैज्ञानिक चिंतन दृष्टि के मानकों पर परखने की आवश्यकता है।

संभवतः वैचारिकी की वैज्ञानिकता को ध्यान में रखकर ही ओशो ने गौतम बुद्ध को धर्म के प्रथम वैज्ञानिक की संज्ञा दी है। ओशो कहते हैं "गौतम बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक हैं। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरुरत नहीं है। उनके साथ तो समझ प्रयाप्त है। अगर तुम समझने को राजी हो तो तुम बुद्ध की नौका में सवार हो जाओगे। अगर श्रद्धा भी आएगी तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ के पहले श्रद्धा की मांग बुद्ध की नहीं है। बुद्ध ये नहीं कहते कि जो मैं कहता हूँ, भरोसा कर लो। वह सोचने, विचारने और जीने पर जोर देते हैं।"[1] तथागत बुद्ध की मान्यता हैं कि पहले जानो और फिर मानो। वे सभी सिद्धांतों को आत्मसात करने से पूर्व उनको तार्किक एवं बौद्धिक पटल पर उतार कर परीक्षित करने का आग्रह करते हैं। अतएव यह भी विदित होना चाहिए कि विज्ञान का प्रारंभिक बिंदु तर्क की कसौटी से ही प्राण उर्जा प्राप्त करता है। अर्थात विज्ञान तर्क और प्रयोगों पर आधारित होता है।

वास्तव में सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता उसका बुद्धिवाद या युक्तिवाद है। बुद्ध का युक्तिवाद पूर्ववर्ती मान्यताओं से सर्वथा भिन्न हैं। बुद्ध से पूर्व वैदिक धर्म में भी बुद्धिवाद के चिन्ह प्राप्त होते हैं किन्तु बुद्ध ने जितना महत्व बुद्धिवाद को दिया उतना किसी ने नहीं दिया। वैदिक काल में वेद की प्रमाणिकता पर संदेह करना ही अधर्म माना जाता था। 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति' अर्थात धर्म के सम्बन्ध में श्रुति ही परम प्रमाण मानी जाती थी। कृष्ण ने गीता में 'बुद्धिं शरणमन्विच्छ' कहकर बुद्धिवाद के अनुशीलन पर बल दिया है किन्तु अंत में धार्मिक तथ्यों के सम्बन्ध में उन्होंने भी शास्त्रों को ही प्रमाणिक

माना है। बुद्ध ने शास्त्रवाद के स्थान पर बुद्धिवाद और युक्तिवाद को प्रतिष्ठित किया। "उन्होंने अपने परम शिष्य आनंद से यहाँ तक कहा कि– धर्म के किसी भी सिद्धांत को इसलिए सत्य मत मानो क्योंकि मैं (स्वयं बुद्ध) ऐसा कहता हूँ, बल्कि उसे तभी स्वीकार करो जब वह तुम्हारी बुद्धि में ठीक जंचे।"[2]

बुद्ध ने 'अत्तदीपाः भवथ अत्तशरणाः' अर्थात अपने दीपक स्वयं बनो की अवधारणा की ओर मानव को अग्रसारित किया। बुद्ध की चिंतन दृष्टि में वैज्ञानिकता को प्रथमतया उनकी अग्रलिखित उक्ति से समझा जा सकता है –

"अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो पयो सिया।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लाभं।"[3]

अर्थात 'आदमी अपना स्वामी स्वयं है, दूसरा कौन उसका स्वामी हो सकता है ? अपने को दमित करने वाला दुर्लभ स्वामित्व को पाता है।' इस तरह उन्होंने ब्रह्म अथवा ऐसी किसी भी अलौकिक सत्ता को नकार दिया जो सृष्टि के नियंता के रूप में जानी जाती है। इसी के साथ ही बुद्ध ने भाग्याश्रित समाज में तर्क की प्रणाली का बीजवपन किया। बुद्ध भाग्यवादी व्यक्ति के स्थान पर बुद्धिमानी व्यक्ति को ही अग्रगामी घोषित करते हैं–"अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्सं' व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो।"[4]

अर्थात प्रमादियों में अप्रमादी सोते रहने वालों में जागरूक, बुद्धिमान व्यक्ति उसी प्रकार आगे बढ़ जाता है, जैसे शीघ्रगामी घोड़ा दुर्बल घोड़े से।

बुद्ध ने तत्कालीन समाज में व्याप्त सभी रूढियों और कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। बुद्ध की शिक्षाओं के अनुरूप विनय के नियमों का निर्धारण बहुत ही वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। बुद्ध ने शील सम्बन्धी विचारों को विस्तार से समझाया है। दीघ निकाय के अंतर्गत तीसरे महाशील में उन्होंने "अंग(लक्षण) विद्या, स्वप्न की व्याख्या करना, भूत–प्रेत, सांप–बिच्छू के झाड़–फूंक की विद्या का त्याग, राज विराजी बताना, ग्रहण फल बताना, उल्कापात आदि का फल बताना, हस्तरेखा, गणना, कविता आदि हीन विद्या से जीविका न करना, शरीर पर देवता बुलाकर प्रश्न पूछना तथा वमन–विरेचन आदि क्रियाओं का परित्याग करते हुए, इन सभी कुरीतियों से भिक्षु–भिक्षुणियों को अलग रहने का उपदेश दिया था।"[5]

बुद्ध के उपदेशों का मूल उद्देश्य मानव कल्याण है। मनुष्य के दुःख के सम्बन्ध में बुद्ध ने चार आर्य सत्य बताएं है– दुःखम् (दुःख है), समुदयः (दुःख का कारण है), निरोधः (दुःख का निवारण है), निरोधगामिनी प्रतिपद् (निवारण के लिए मार्ग है)। बुद्ध की यह चिंतन दृष्टि, वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रक्रिया के अनुरूप है। चार आर्य सत्य मात्र मानव जीवन के दुःख को उल्लेखित नहीं करते हैं। बल्कि सामाजिक क्षेत्र की किसी भी समस्या के निवारण के लिए होने वाले वैज्ञानिक अन्वेषण के चार चरणों को भी दर्शाते हैं। शोध कार्य कुछ विशिष्ट पदों में क्रमानुसार संचालित किया जाता है। जो क्रमशः हैं– 1. किसी समस्या को देख कर उसको सुलझने की प्रेरणा, 2. समस्या से सम्बन्धित प्रासंगिक तथ्यों का संकलन, 3. विवेकपूर्ण विश्लेषण और अध्ययन, 4. परिणाम स्वरूप निर्णय। अनुसन्धान प्रक्रिया में सबसे पहले ज्ञान क्षेत्र की किसी समस्या को देखा जाता है। बुद्ध के उक्ति प्रवण हृदय के अनुसार माने तो वह समस्या दुःख है। फिर प्रासंगिक तथ्यों का संकलन करना अर्थात दुःख के कारण को जानना। विवेकपूर्ण विश्लेषण और अध्ययन अर्थात दुःख का निवारण खोजना। अंत में परिणाम स्वरूप निर्णय अर्थात दुःख को दूर करने के लिए अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना। बुद्ध ने मानवीय प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए माना कि मनुष्य का मन ही सभी कर्मों का नियंता है। अतः मानव की गलत प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने के लिए उस के मन में सद् विचारों का प्रवाह करके उसे सद् मार्ग पर ले जाना आवश्यक है। उन्होंने यह सद् मार्ग 'धम्म' के रूप में दिया।

प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत के रूप में बुद्ध ने मनुष्य की समस्याओं के निवारण लिए एक वैज्ञानिक मार्ग दिया। प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ है 'सापेक्ष कारणवाद'। यह दो शब्दों 'प्रतीत्य' और 'समुत्पाद' के योग से मिल कर बना है। 'प्रतीत्य' का अर्थ है– 'इसके होने से', 'समुत्पाद' का अर्थ है– 'यह उत्पन्न होता है'। इस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ हुआ– 'एक वस्तु के उपस्थित होने पर किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति'। 'विसुद्धिमग्ग' में कहा गया है– "न उप्पाद मंत्र पटिच्च समुप्पादो"। अर्थात प्रत्येक उत्पाद का कोई प्रत्यय कारण होता है। उत्पत्ति न स्वतः होती है और न ही बिना किसी हेतु के होती है बल्कि वह प्रत्ययों के आश्रय से ही या उनके साथ ही संभव है। यही प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत का प्रस्थान बिंदु है। 'बुद्ध ने कहा है– अस्मिन् सति इदं भवति अर्थात इस चीज के होने पर यह चीज होती है, जगत की वस्तुओं या घटनाओं में सर्वथा यह कार्य–कारण का नियम जागरूक है।'[6]

बुद्ध ने सम्बोधि को प्राप्त करने के समय ही अंतिम याम में इस महान सत्य का साक्षात्कार किया था। बुद्धत्व प्राप्त कर, विमुक्ति–सुख का अनुभव करते हुए, सप्ताहभर एक ही आसन पर बैठकर बुद्ध ने रात के पहले पहर में 'इसके होने से यह होता है, और यह नहीं होता है' का ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार उन्होंने अनुलोम–विलोम का चिंतन किया था। उनकी इसी स्थापित दृष्टि से न्यूटन का क्रिया–प्रतिक्रिया का सिद्धांत भी साम्य रखता है। न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार– "प्रत्येक क्रिया की सदैव बराबर एवं विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है।"[7] वास्तविकता यह है की बुद्ध का यह चिंतन इतना वैज्ञानिक है कि अगर इस नियम का मनुष्य अपने जीवन में आचरण करे तो अपने सभी दुखों का अंत कर सकता है। वह अपनी सभी समस्याओं का हल पा सकता है। प्रतीत्यसमुत्पाद के द्वादश अंग हैं, ये सभी एक दूसरे के कारण ही उत्त्पन्न होते हैं। इन्हें भवचक्र, संसारचक्र, जन्म–मरण चक्र और धर्मचक्र के नाम से भी जाना जाता है। जो क्रमशः इस प्रकार हैं– अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन– छः इन्द्रियां, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान (राग), भव, जाति (जन्म), जरा–मरण। इनमें प्रथम अंग, दूसरे अंग का कारण बनता है, दूसरा तीसरे का और तीसरा चौथे का कारण बनता है। ये सभी कारण एक दूसरे पर ही निर्भर

करते हैं और यही क्रम अंत तक लगातार चलता रहता है। इस प्रकार मनुष्य क्रम से जन्म में आकर जन्म–मरण–शोक–दुःख आदि का भागी बन जाता है। बुद्ध के इस मत के अनुसार सारा संसार उत्पत्ति और विनाश के नियम से शासित है।

चूँकि प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार प्रत्येक घटना के पीछे एक कारण होता है। उस कारण का अस्तित्व समाप्त होने के साथ ही घटना का अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है।

जिससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक घटना और वस्तु का अस्तित्व किसी कारण विशेष पर निर्भर करता है, न की किसी ईश्वरीय सत्ता पर। साथ ही प्रत्येक वस्तु की नश्वरता भी सिद्ध होती है। जो पूर्णतः एक वैज्ञानिक दृष्टि है। प्रतीत्यसमुत्पाद का यह सिद्धांत अनित्यवाद के रूप में प्रतिफलित होता है। कालान्तर में इसी अनित्यवाद को बुद्ध के अनुयायियों ने क्षणिकवाद के रूप में व्याख्यायित किया। बौद्ध दर्शन का क्षणिकवाद इस सिद्धांत का प्रतिपादन करता है कि संसार की प्रत्येक घटना अथवा वस्तु क्षणभंगुर है। क्षणभंगुरता के इस सिद्धांत को विकासवाद की अवधारणा के साम्य के रूप में भी देखा जा सकता है। विकास की प्रक्रिया निरंतर गतिमान होती है। किसी भी घटना अथवा वस्तु की स्थिति प्रत्येक आने वाले क्षण में, प्रत्येक बीते हुए क्षण से सर्वथा भिन्न होती है। ये ही आधुनिक युग में डार्विन के विकासवाद की अवधारणा का मूल है। जिसके अनुसार "प्रकृति क्रमिक परिवर्तन द्वारा अपना विकास करती है।"[8]

बुद्ध अनीश्वरवादी तथा अनात्मवादी हैं अर्थात वे आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं बल्कि प्रकृति में निहित पञ्चस्कंधों को संरचना के मूल तत्व मानते हैं। ये पांच संघात रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान हैं। मनुष्य को इन्हीं पञ्चस्कंधों का सम्पुजंन माना गया है। वह कोई शुद्ध सत्ता नहीं है वरन भौतिक और मानसिक अवस्थाओं का समुदय मात्र है। बुद्ध आत्मा ही नहीं बल्कि किसी भी अपरिवर्तनीय सत्ता के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते हैं। बुद्ध ने कहा कि "पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा श्रुत, स्मृत, विज्ञान सबको, न मैं, न मेरा, समझना चाहिए, क्योंकि ये मेरे नहीं हैं और न मैं इनका हूँ।"[9] अब प्रश्न उठता है कि जब तथागत बुद्ध आत्मा के अस्तित्व को नकारते हैं तो फिर पुनर्जन्म और निर्वाण किसका स्वीकार करते हैं ? बुद्ध का निर्वाण से तात्पर्य, तृष्णा के अंत होने से सभी प्रकार के दुखों के अंत से है। तथागत गौतम बुद्ध के उपदेशों के अवलोकन के पश्चात कहा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में कोई भी भौतिक या अभौतिक तत्व शाश्वत नहीं है। न ही इन्सान के अंदर कोई अभेद्य आत्मा है और न ही विश्व के पीछे कोई परमात्मा है। वह प्रारंभ से अंत तक स्कन्ध संघात ही है।

आत्मा के सम्बन्ध में आधुनिक काल के विश्वविख्यात दार्शनिक 'डेविड ह्यूम' का मत बुद्ध के अनात्मवाद से मिलता–जुलता है। जिसके अनुसार– "मनुष्य भिन्न–भिन्न बोधों के संगृहीत पुंजों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो अचिन्त्य वेग के साथ एक–दूसरे के पश्चात् क्रमबद्ध रूप में आते रहते हैं और एक निरंतर प्रवाह एवं गति में है, और न ही आत्मा की कोई एक शक्ति ऐसी है जो संभवतः एक क्षण के लिए भी अपरिवर्तित रहती हो।"[10] अतएव बुद्ध के प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणिकवाद और अनात्मवाद की अवधारणा पूर्णतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित हैं।

प्राचीन काल से ही भारतीय विद्वानों ने तत्व के सूक्ष्मतम खण्ड के रहस्य को जानने का प्रयास किया है। भारतीय दार्शनिक परम्परा में वैशेषिकों का परमाणुवाद अत्यंत प्रसिद्ध है। जिसका विकास 300 ई.पू. से माना जाता है। वैशेषिकों का दर्शन विश्व की संरचना के निर्माण के लिए सृष्टिवाद (Theory of creation) का सहारा लेता है। जिसके मतानुसार विश्व की संरचना के मूल में चार तत्व यथा– पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि समाहित हैं। किन्तु आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार "सर्वास्तिवादियों ने सबसे पहले परमाणुवाद का उल्लेख किया है।"[11] सर्वास्तिवादी, बौद्ध धर्म का एक निकाय है। 'सर्वास्तिवाद' शब्द 'सर्व+अस्ति' से मिलकर बना है जिसका सामान्य अर्थ होगा 'जो वस्तु की सभी अवस्थाओं को स्वीकार करता हो'। सर्वास्तिवादी वस्तु का द्रव्यतः अस्तित्व, जड़ एवं चेतन दोनों रूपों में स्वीकार करते हैं और वस्तुओं की तीनों कालों (भूत, भविष्य, और वर्तमान) में सत्ता मानते हैं। "सर्वास्तिवादियों के अनुसार परमाणु चौदह प्रकार के हैं– पांच विज्ञानेंद्रिय, पांच विषय तथा चार महाभूत। ये संघात रूप में भाजन लोक में पाए जाते हैं। इन्हीं को स्थविरवादी 'कलाप' कहते हैं।"[12]

बौद्धों के तत्वमीमांसीय विवेचन के एक अंश को परमाणुवाद के अंतर्गत रखा जा सकता है। जिस रूप में बौद्ध मत के अंतर्गत 'रूप कलाप' और 'धम्म' की व्याख्या की गयी है संभवतः उसकी तुलना परमाणुवाद से की जा सकती है।

बुद्ध ने बिना किसी वैज्ञानिक यंत्र का सहारा लिए सिर्फ अपने मनोबल से यह सच्चाई जान ली थी कि ठोस लगने वाला हमारा शरीर ही नहीं, बल्कि समस्त भौतिक जगत में वस्तुतः कुछ भी ठोस नहीं है। यह केवल भासमान सत्य है और परम सत्य यह है कि भौतिक जगत के सारे पदार्थ असंख्य नन्हें–नन्हें परमाणु कणों से बने हैं। जो इतने नन्हें हैं कि सामान्य आंखों द्वारा देखे भी नहीं जा सकते। बुद्ध ने इन्हें कलाप कहा जो स्थिर नहीं, ठोस नहीं और प्रतिक्षण प्रज्वलित–प्रकंपित होते रहते हैं। वे कहते है सम्पूर्ण जगत प्रकम्पन है–

"सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो।"[13]

बौद्धाचार्य वसुबन्धु "परमाणु का विचार, रुपी–धर्मो के सहोत्पाद–नियम के संबंध में करते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि यहाँ 'परमाणु' से द्रव्य–परमाणु इष्ट नहीं है, किन्तु 'संघात–परमाणु' अर्थात 'सर्वसूक्ष्म रूप संघात' इष्ट है।''[14] अर्थात उनका मानना है कि सप्रतिघ रूपों का सर्वसूक्ष्म भाग, जिसका पुनः विभाग नहीं हो सकता, परमाणु कहलाता है और जो निश्चय ही सर्व सूक्ष्म रूप होता है। आधुनिक युग की परमाणु संबंधी अवधारणा इसी के समीप्य ही जान पड़ती है जिसके अनुसार– "एक परमाणु किसी भी साधारण से पदार्थ की सबसे छोटी घटक इकाई है जिसमें एक रासायनिक तत्व के गुण होते हैं। हर ठोस, तरल, गैस, और प्लाज्मा तटस्थ या आयनन परमाणुओं से बना है।"[15]

प्राचीन काल से ही मनुष्य की मुक्ति, मोक्ष अथवा निर्वाण के मार्ग को खोजने का प्रयास विभिन्न चिंतकों द्वारा किया गया। किसी ने मोक्ष प्राप्ति के लिए ईश्वर उपासना और विभिन्न कर्मकांड आवश्यक माने, तो किसी ने जीवन और पूर्वजन्म के कर्मों के आधार पर निर्वाण प्राप्ति की संभावनाएं बताई। किन्तु बुद्ध नहीं मानते कि व्यक्ति के साथ कहीं किसी आत्मा जैसे स्थायी नित्य तत्व का भी कोई अस्तित्व है। साधारणतया जिसे जीव के रूप में जाना जाता है बुद्ध उसे चित्त के रूप में उल्लेखित करते हैं। ''चिन्तेती ति चित्त अर्थात जो चिंतन करता है उसे चित्त कहते हैं। किसी भी व्यक्ति द्वारा मनसा, वचना और कर्मणा, जो कार्य किया जाता है उसका आधार चित्त ही होता है।"[16] बौद्ध दर्शन के अनुसार मन की शांति ही सबसे बड़ी उपलब्धि होती है। बुद्ध के धम्म में मन की शांति के इस परम लक्ष्य को प्राप्त करने के उपाय के रूप में चार आर्य सत्य, मध्यमा प्रतिपद, द्वादशनिदान, योगाचार आदि की विशद चर्चा मिलती है। "बौद्ध दर्शन में चित्त, मन तथा विज्ञान समानार्थक माने जाते हैं। इस विविध नामकरण के लिए कारण भी हैं। 'मनस' की व्युत्पत्ति बौद्ध ग्रंथों में 'मा' धातु से बतलाई जाती है। 'मा' का अर्थ है मापना, जोखना, किसी वस्तु के विषय में निश्चय करना। अतः जब हमें चित्त के निर्णयात्मक प्रवृत्ति रखने वाले अंश पर प्रधानता देनी रहती है, तब हम मन का प्रयोग करते हैं।"[17] मन अथवा चित्त को महत्व देने के कारण बौद्ध धर्म को मनोवैज्ञानिक धर्म कहा जाता है और बौद्ध धर्म के प्रवर्तक तथागत बुद्ध को प्रथम मनोवैज्ञानिक माना जाता है।

बुद्ध ने मनुष्य के दुःख निवारण हेतु अष्टांगिक मार्ग बताया है। इन मार्गों के अनुशीलन के पश्चात् मनुष्य की सभी समस्याओं का निदान संभव माना है। बुद्ध ने प्रत्येक मार्ग के साथ सम्यक का योग किया है। सम्यक अर्थात सम्पूर्ण, समस्त या उचित अतः बुद्ध प्रत्येक मार्ग का अनुपालन उचित सम्पूर्णता के साथ करने का उपदेश देते हैं। बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग में 'सम्यक दृष्टि' को प्रथमतया बताया है। जिसके अंतर्गत मानव को जीवन सार्थक बनाने के लिए सभी जैविक तथा अजैविक तत्वों के प्रति सकारात्मक दृष्टि रखने का उपदेश दिया गया है। बुद्ध ने मनुष्य की उचित दृष्टि को पर्यावरण के संरक्षण लिए भी आवश्यक माना है। उन्होंने बताया कि पेड़–पौधों में भी जीवन होता है। जिन्हें उन्होंने एक इन्द्रिय जीव कहा है। वृक्षों को बचाने के लिए उन्होंने कहा है – अकारण हरे तृणों का मर्दन न हो तथा एक इन्द्रिय जीव को पीड़ा ना पहुँचे।

"इमे पन समणा सक्यपुत्तिया देमन्तम्पि गिम्हम्पि चारिकं चरन्ति, हरितानि तिणानि सम्मद्दन्ता, एकीन्द्रियं जीवं विहेठेन्ता, बहू खुद्दके पाणे सङाघतं आपादेन्ता।"[18]

आधुनिक युग में वैज्ञानिक अनुसंधानों के माध्यम से ये पुष्टि भी हो चुकी है कि "पेड़–पौधों में चेतना का स्तर एक विशेष प्रकार का होता है और यह जीव–जन्तुओं से भिन्न होता है। प्रसिद्ध भारतीय वनस्पतिविद् जगदीश चन्द्र बसु इस मान्यता के जनक थे।... जगदीश चन्द्र बसु के इस प्रयोग का अनेकों वैज्ञानिकों ने सूक्ष्म विश्लेषण किया। आधुनिकतम अन्वेषणों से भी पता चला है कि पौधों में संवेदना होती है।"[19] जिस सत्य को आधुनिक वैज्ञानिकों ने आज से 100 वर्ष पूर्व प्रकाशित किया। उसकी नींव तथागत बुद्ध बहुत पहले निर्मित कर चुके थे।

बुद्ध काल में प्रकृति के साथ आज जैसी छेड़छाड़ नही हो रही थी किन्तु समस्या जरुर थी। आज जहाँ सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण के संरक्षण हेतु दिन प्रतिदिन नई–नई युक्ति खोज रहा है। वहीं बुद्ध ने तत्कालीन समाज में पर्यावरण संतुलन यथास्थिर बनाये रखने के लिए विभिन्न प्रयास किए। बुद्ध ने पर्यावरण के रक्षण के लिए वृक्षों की कटाई करने से मना किया। पर्यावरण प्रदूषण के कारण मानव का जीवन प्रदूषित हो रहा है। आज विज्ञान के युग में भी हम पर्यावरण संरक्षण का उचित मार्ग नहीं खोज पा रहें हैं। किन्तु बुद्ध ने 2600 वर्ष पूर्व दूषित पर्यावरण के मानव जीवन पर होने वाले विपरीत प्रभावों को जान लिया था। "चिरस्थायी विकास को ध्यान में रखते हुए बुद्ध ने वायु–प्रदूषण से बचने के लिए वनों की कटाई से विरत रहने का उपदेश दिया है। यदि कोई भिक्षु किसी बड़े वृक्ष को काटे तो वह पाराजिक नामक अपराध से आपन्न हो जाता है।"[20] वे पर्यावरण संरक्षण को मानव जीवन के संरक्षण से जोड़ते हैं। ग्लोबल वार्मिंग की समस्या से जूझ रहे विश्व में आज अनेकों सावधानियां बरतने की कोशिश की जा रही हैं। बुद्ध काल में भी इस प्रकार की सावधानियों का उल्लेख किया गया है– 56वें पाचित्तिय में कहा गया है कि जरुरत न होने पर भी अगर कोई निरोग भिक्षु तपने की इच्छा से आग जलाये अथवा जलवाए, तो उसे पाचित्तिय का दोष लगता है।

"यो पन भिक्खु अगिलानो विसिब्बनापेक्खो जोतिं समादहेय्य वा समादहापेय्य वा पाचित्तियं 'ति।"[21]

कूटदन्तसुत्त में यह उल्लेख है कि कूटदन्त के भौतिक यज्ञ में यूप–निर्माण के लिए वृक्ष काटे जाते थे, परहिंसा के लिए दर्भ(कुश) काटे जाते थे। किन्तु भगवान बुद्ध ने जिस अध्यात्मिक यज्ञ का निरूपण किया था, वह पूर्णतः वैज्ञानिक था और उसमें न तो वृक्षों की कटाई होती थी न ही पर िंहसा के लिए दर्भ काटे जाते थे

"न रूक्खा छिज्जिसु यूपत्थाय,
न दब्भा लूयिंसु बरिहिसत्थाय।"[22]

पर्यावरण की शुद्धता के साथ बुद्ध ने जल प्रदूषण से बचाव लिए भी विनय पिटक में कई स्थानों पर उपदेश दिया है। वहीं वर्णित सेखिय धम्म में पानी में मल–मूत्र त्यागना वर्जित बताया है "न उदके अगिलानो उच्चारं वा पस्सावं वा खेलं वा करिस्सामी ति सिक्खा करणीया' ति।"[23] साथ ही बुद्ध ने भिक्षुओं को यह अनुज्ञा प्रदान की थी कि कूड़े–कचरे को यत्र–तत्र न फेंककर एक सुनिश्चित स्थान में छोड़ना चाहिए– "सकारं विचिनित्वा एकमन्तं छड्डुतब्बं"[24]

बुद्ध ने स्पष्ट किया कि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संयमित एवं संतुलित रूप से करना चाहिए जिससे प्राकृतिक पारिस्थितिकी संतुलन बना रहता है। इस प्रकार बुद्ध वैज्ञानिक तथ्यों के आधार प्रकृति को मनुष्य के जीवन के प्रत्येक सुख–दुःख, लाभ–हानि, समृधि इत्यादि के लिए बहुत बड़ा कारक घोषित करते हैं।

निष्कर्ष

बुद्ध की चिंतन दृष्टि के सूक्ष्म अवलोकन के पश्चात यह स्पष्ट होता है की बुद्ध मात्र एक धर्म के प्रवर्तक नहीं थे। वे एक वैज्ञानिक सोच रखने वाले जागरूक इन्सान थे। जो प्रत्येक तथ्य को विश्लेषित करने के पश्चात ही स्वीकार करते थे। एडहेरेंट्स.कॉम वेबसाइट और पियू रिसर्च के अनुसार दुनिया के सात अरब से ज्यादा जनसंख्या के करीब कुल अस्सी प्रतिशत लोग किसी धर्म या किसी धार्मिक समुदाय का हिस्सा हैं। दुनिया भर में 37.6 करोड़ लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। यानी दुनिया में 5.25 प्रतिशत लोग बौद्ध धर्म का अनुकरण कर रहे हैं। विश्व को आज एक वैज्ञानिक समाज की जरूरत है। ऐसा समाज जहाँ समता, स्वतंत्रता एवं बन्धुत्व को प्राथमिकता प्रदान की जा सके। एक वास्तविकता यह भी है कि दुनिया में धार्मिक टकरावों का एक कारण इन धर्मो को विज्ञान द्वारा दी जा रही चुनौती भी है। विभिन्न ईश्वरवादी धर्मो के अनुयायियों की संख्या कम होती जा रही है क्योंकि वे विज्ञान की तर्क और परीक्षण वाली कसौटी पर खरे नहीं उतर पा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में आज वैज्ञानिक युग में भी बुद्ध की चिंतन दृष्टि पूर्णतः प्रासंगिक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *https%@@samaybuddha-wordpress-com@2013@08@25@buddha&is&first&scientist&of&brain@*
2. *आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध–दर्शन–मीमांसा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2011, पृ.सं. 374*
3. *भदन्त आनंद कौसल्यायन, धम्मपदं, अत्तवग्गो, 160/4, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, छठा संस्करण, 24 अक्टूबर 1993 ई. पृ.सं.40*
4. *भदन्त आनंद कौसल्यायन, धम्मपदं, अप्पमादवग्गो, 29/9, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, छठा संस्करण, 24 अक्टूबर 1993 ई. पृ.सं.07*
5. *दीघनिकाय, ब्रह्मजाल सुत्त, पृ.सं.12*
6. *आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध–दर्शन–मीमांसा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2011, पृ.सं.60*
7. *https%@@hi-wikipedia-org@wiki@U;wVu&ds&xfr&ds&fu;e&@25@01@2018*
8. *http%@@www-dw-com@hi@MkÆou&ds&fodklokn&dh&çklafxdrk@03@02@2018*
9. *मज्झिम निकाय, मूलपरियसुत्त (प्रथम सुत्त)*
10. *ह्यूम वर्क्स, खण्ड–1, पृ.सं.3*
11. *आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध धर्मदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2006 ई. पृ.सं.322*
12. *आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध धर्मदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2006 ई. पृ.सं.323*
13. *सं०नि० 1.168, उपचालासुत्तं*
14. *आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध धर्मदर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2006 ई. पृ.सं.323*
15. *https%@@hi-wikipedia-org@wiki@ijek.kq&02@02@2018*
16. *कृष्णदेव प्रसाद वर्मा, चित्तशोधक के रूप में भगवान बुद्ध– बौद्ध प्रज्ञा सिन्धु– खण्ड 7, संपादक–प्रो. सत्यप्रकाश शर्मा, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013 ई. पृ.सं.122*
17. *आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध–दर्शन–मीमांसा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण 2011, पृ.सं.170*
18. *विनयपिटक, महावग्गपालि, वि०वि०वि० भाग 89 इगतपुरी 1998, पृ.सं.181*
19. *http%@@literature-awgp-org@akhandjyoti@1998@May@v2-12*
20. *निहारिका लाभ, पालि तिपिटक में पर्यावरण–चिंतन, बौद्ध प्रज्ञा सिन्धु– खण्ड 4, संपादक– प्रो. सत्यप्रकाश शर्मा, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2009 ई. पृ.सं.425*
21. *विनयपिटकं, पाचित्तियपालि, वि०वि०वि०भाग 88 इगतपुरी, 1998 ई. पृ.सं.156*
22. *दीघनिकायो 1, वि०वि०वि० भाग 01, इगतपुरी, 1998 ई. पृ.सं.06*
23. *धम्मपदपालिवि०वि०वि० भाग 47 इगतपुरी, 1998 ई. पृ.सं.23*
24. *विनयपिटकं, चुल्लवग्गपालि, वि०वि०वि० भाग 90 इगतपुरी, 1998 ई. पृ.सं.351*